विशेष आर्थिक क्षेत्र और उससे जुड़े सवाल

"अतः विज्ञान का प्रत्यक्ष कार्यभार, मार्क्स के अनुसार, संघर्ष का सच्चा नारा मुहैया करना है, अर्थात उसे इस संघर्ष को उत्पादन सम्बन्धों की एक निश्चित प्रणाली की उपज के रूप में वस्तुपरक ढंग से प्रस्तुत करने में सक्षम होना, इस संघर्ष की आवश्यकता, उसकी अंतर्वस्तु, विकास की गति तथा अवस्थाओं को ***समझने*** में सक्षम होना है। "संघर्ष का नारा" मुहैया करना तब तक असंभव है, जब तक संघर्ष के प्रत्येक रूप का सूक्ष्मतापूर्वक अध्ययन नहीं किया जाता है, जब तक एक रूप से दूसरे रूप में संक्रमण के दौरान उसकी प्रत्येक मंजिल का पता नहीं लगाया जाता, ताकि संघर्ष के आम स्वरूप को और उसके आम लक्ष्य को, अर्थात समस्त शोषण तथा समस्त उत्पीड़न के पूर्ण तथा अंतिम उन्मूलन के लक्ष्य को नजर से ओझल किये बिना किसी भी घड़ी में स्थिति का मूल्यांकन किया जा सके।"

(लेनिन, "जनता के मित्र" क्या हैं और वे सामाजिक-जनवादियों के विरुद्ध कैसे लड़ते हैं?, पृष्ठ-255-256, खण्ड-1, संकलित रचनाएं- दस खण्डों में, जोर मूल में)

नंदीग्राम में जारी संघर्ष तथा पश्चिम बंगाल की वाम मोर्चा सरकार द्वारा किये जा रहे क्रूर दमन ने 'विशेष आर्थिक क्षेत्र' (Special Economic Zone- SEZ) के निर्माण को राष्ट्रीय बहस का मुद्दा बना दिया है। राज्य सरकार तथा भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) के कार्यकर्ताओं और गुंडों के द्वारा रचे जा रहे हत्याकांड ने दिखला दिया है कि एक संशोधनवादी पार्टी विकसित होकर वहां पहुंच गयी है जहां वह फासिस्टों के समान व्यवहार कर रही है। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ -भारतीय जनता पार्टी के साम्प्रदायिक फासीवाद के स्थान पर इनका व्यवहार सामाजिक फासीवादियों की तरह का है।

खैर! इस लेख की विषयवस्तु सामाजिक फासीवाद नहीं बल्कि 'विशेष आर्थिक क्षेत्र' नामक परिघटना है। समसामयिक भारतीय समाज में इस परिघटना ने कई सवाल खड़े कर दिये हैं। साथ ही भारत के कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों के समक्ष एकदम नयी तरह की चुनौतियां पेश कर दी हैं।

प्रस्तुत लेख विशेष आर्थिक क्षेत्र (सेज) परिघटना से जुड़े कई अवधारणागत सवालों को उठायेगा। असल में हमारे देश में जहां एक ओर सामाजिक जनवादी, संशोधनवादी पार्टियां तथा कुछ यांत्रिक मार्क्सवादी इन क्षेत्रों का उत्पादक शक्तियों के विकास के नाम पर खुला समर्थन कर रहे हैं, ऐसा प्रचार करके वे मजदूरों तथा मेहनतकश किसानों के साथ बुद्धिजीवी वर्ग के बीच भ्रम फैला रहे हैं। वहीं इसी तरह दूसरी ओर कई कम्युनिस्ट क्रांतिकारी सेज का विरोध सर्वहारा वर्गीय अवस्थिति से खड़े होकर नहीं कर रहे हैं। लेनिन का उपरोक्त उद्धरण इसी सम्बन्ध में है। कम्युनिस्ट क्रांतिकारी जो गलती कर रहे हैं वह भारतीय समाज में उत्पादन सम्बन्धों की गलत समझदारी से मूलतः उपजती है। फलतः दो गलत नतीजे सामने आने हैं। एक, या तो कम्युनिस्ट क्रांतिकारी चाहे या अनचाहे देहाती सर्वहारा, छोटे व मझोले किसानों को परोपजीवी देहाती पूंजीपति वर्ग और धनी किसान के पीछे लामबंद करेंगे या फिर दूसरी ओर वे छोटे व मध्यम स्तर के उत्पादकों की पूंजीवाद में नियति के बारे में भ्रम फैलायेंगे। छोटे उत्पादकों की वर्तमान स्थिति को बनाये रखने के लिए वे हो सकता है कि जुझारू अर्थवाद का परिचय दें परन्तु इससे 'समस्त शोषण तथा समस्त उत्पीड़न का पूर्ण तथा अंतिम उन्मूलन का लक्ष्य' कहीं ओझल हो जायेगा।

पूंजीवाद के चरित्र से सम्बन्धित कुछ बेहद सामान्य परन्तु 'विस्मृत' बातों को भी यहां दोहराये जाने को आवश्यकता से अधिक मजबूरी समझा जाना चाहिये। सेज से जुड़े अन्य मुद्दे यथा- साम्राज्यवाद की भूमिका, भूमि अधिग्रहण, स्थानीय आबादी का विस्थापन के साथ कुछ रणकौशलात्मक बातें भी की गयीं है। रणकौशलात्मक बातों की यहां एक सीमा बनती है वह यह कि भारत में सेज नामक परिघटना अभी शुरू ही हो रही है। इसने अभी आकार ग्रहण करना प्रारम्भ ही किया है। केन्द्र व राज्य सरकारों की नीतियां ठोस शक्ल ग्रहण कर ही रही हैं। अतः जैसे-जैसे यह प्रक्रिया आगे बढ़ेगी वैसे-वैसे रणकौशलात्मक बातों को विकसित किया जा सकेगा।

I
सवाल उत्पादक शक्तियों का नहीं उत्पादन सम्बन्धों का है

दुनिया में समाजवाद कैसे आयेगा? इस सवाल के जवाब में उत्पादक शक्तियों का विकास के एक समुचित स्तर पर पहुंचने का तर्क, एक ऐसा तर्क है जो सामान्य तौर पर किसी भी मार्क्सवादी को अपना कायल बना सकता है। अपने आप को मार्क्सवादी कहने वाला कह उठेगा कि हां! यह बात ठीक है, जब तक उत्पादक शक्तियां उस स्तर तक नहीं पहुंच जाती हैं जहां पर समाजवाद का आना सम्भव हो तब तक किसी न किसी रूप में पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली को लागू करना पड़ेगा। कुछ लोग तो इस तर्क को खींच कर वहां पहुंचा देते हैं जहां वे समाजवादी समाजों में पूंजीवादी पुनर्स्थापना का एक प्रमुख कारण इसे ही बताने लगते हैं।

यांत्रिक मार्क्सवादी, सामाजिक-जनवादी इसी तरह के तर्क के आधार पर, विशेष आर्थिक क्षेत्रों के निर्माण का, मार्क्सवाद के खोल में लपेट कर समर्थन करते हैं। इस सवाल की और गहराई में उतरने पर वे वर्तमान वैश्वीकरण, पूंजी की आवाजाही के मुक्त प्रवाह को प्रगतिशील घोषित कर देते हैं। इस तरह, हर तरह की ना-नुकुर के बावजूद वे पूंजीवाद, वैश्वीकरण और इसी के एक अंश के तौर पर विशेष आर्थिक क्षेत्र जैसी नीतियों के खुले-छिपे समर्थक बन जाते हैं।

सवाल यहां यही उठता है कि मार्क्सवाद इस सवाल को कैसे लेता है। पहले कुछ जानी-पहचानी बातें कर लें।

मार्क्सवाद के अनुसार मनुष्यों के जिन्दा रहने के लिए जरूरी है कि वे भोजन, कपड़ा, आवास, ईंधन इत्यादि वस्तुओं का उत्पादन करें और इनका उपभोग करें। इन वस्तुओं का उत्पादन करने के लिए उत्पादन के साधनों की जरूरत होती है।

भौतिक मूल्य पैदा करने वाले उत्पादन के उपकरणों, इन उपकरणों को प्रयोग में लाने वाले मनुष्यों, उत्पादन करने के संचित होते अनुभवों व इस दौरान हासिल किये जा रहे श्रम कौशल से भौतिक मूल्यों का उत्पादन करते जाते हैं। इन सबसे मिलकर किसी समाज व्यवस्था के उत्पादन की उत्पादक शक्तियां तय होती हैं।

उत्पादन का चरित्र सामाजिक होता है क्योंकि मनुष्य अलग-अलग रह कर कुछ नहीं कर सकते हैं। उत्पादन करने के लिए मनुष्यों को प्रकृति से संघर्ष करना होता है और उसे काम में लाना होता है। और मनुष्य ऐसा हर समाज में, हर युग में मिलजुल कर सामूहिक रूप से ही करते हैं। सामाजिक उत्पादन करने के दौरान मनुष्यों के बीच आपस में जो सम्बन्ध बनते हैं वे उत्पादन सम्बन्ध कहलाते हैं।

इस तरह से सामाजिक उत्पादन के दो पहलू हैं- उत्पादक शक्तियां तथा उत्पादन सम्बन्ध। ये दोनों आपस में द्वन्द्वात्मक सम्बन्धों में बंधे होते हैं। एकता और संघर्ष के नियम से बंधे होते हैं।

उत्पादक शक्तियां एक अवस्था में ठहरी नहीं रहती हैं। वे गतिशील होती हैं तथा क्रांतिकारी गुण से लैस होती हैं। पहले समाज की उत्पादक शक्तियां विकसित होती है और बदलती हैं तब जाकर ही इन पर आधारित उत्पादन सम्बन्ध भी बदलते हैं। उत्पादक शक्तियों के अनुरूप बन जाते हैं। उत्पादन सम्बन्ध उत्पादक शक्तियों पर निर्भर अवश्य होते हैं परन्तु अपनी बारी में उत्पादक शक्तियों के विकास को प्रभावित करते हैं। काल विशेष में उत्पादन सम्बन्ध उत्पादक शक्तियों के विकास को अवरुद्ध या मुक्त कर सकते हैं। एक समय, खासकर क्रांति के समय उत्पादन सम्बन्ध ही निर्णायक भूमिका निभाते हैं।

असल में उत्पादन सम्बन्धों का उत्पादक शक्तियों से बेमेल होना इस बात का द्योतक होता है कि अब समाज उस दहलीज पर खड़ा है जहां उत्पादन सम्बन्ध बदले जाने चाहिए और उन्हें उत्पादक शक्तियों के अनुरूप होना चाहिए। उत्पादक शक्तियों के आगे का विकास अब इसी बात पर निर्भर कर रहा होता है कि क्रांति सम्पन्न करके उत्पादन सम्बन्धों को उत्पादक शक्तियों के अनुरूप बनाया जाये। अन्यथा उत्पादक शक्तियों का विनाश हो रहा होता है। पूंजीवादी समाजों में आर्थिक संकट, मंदी इसी को अभिव्यक्त कर रहे होते हैं।

उत्पादक शक्तियों व उत्पादन सम्बन्ध के द्वन्द्वात्मक सम्बन्धों का सही ज्ञान होना आवश्यक है। सही व सटीक ज्ञान और मूल्यांकन का अभाव कई किस्म की वस्तुगत और आत्मगत गलतियों को जन्म दे सकता है।

यांत्रिक मार्क्सवादी उत्पादक शक्तियों व उत्पादन सम्बन्ध के द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध को या तो समझते नहीं हैं या फिर जान बूझकर उसे छुपा जाते हैं। उत्पादक शक्तियों के विकास की अवधारणा बहुत सुभीते की है। उत्पादन सम्बन्धों का सवाल जोखिम का है। इस सवाल से उत्पादन सम्बन्धों को बदलने का कार्यभार निकलता है। अर्थात क्रांति का। उत्पादक शक्तियों के विकास का सवाल उठाते हुए आराम से अकादमिक बहसें की जा सकती हैं। 'धैर्यपूर्वक' उस समय की प्रतीक्षा की जा सकती है जब तक उत्पादक शक्तियां अपने 'मन मुताबिक' स्तर तक विकसित न हो जायें। कुल मिलाकर

क्या? उत्पादक शक्तियों के विकास की बातें पूंजीवाद की निर्लज्ज पैरोकारी बन जाती हैं। आर्थिक नियतिवादी सोच की जमीन भी यहीं पर है।

उत्पादन सम्बन्धों की जब बात की जाती है तो उससे क्या आशय निकलता है? उत्पादन सम्बन्ध के अंतर्गत तीन बातें आती हैं। पहली, उत्पादन के साधनों पर किसका स्वामित्व है। दूसरी, उत्पादन करने वाले लोगों की भूमिका और उनके मध्य कायम सम्बन्धों की प्रकृति क्या है और तीसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि, उत्पाद का वितरण किस तरह हो रहा है, उसका स्वरूप क्या है।

उत्पादन के साधनों के स्वामित्व का सवाल एक ऐसा सवाल है जो उत्पादन सम्बन्धों की प्रकृति को निर्धारित करता है। समाज व्यवस्था के निर्धारण में यही सवाल सबसे महत्वपूर्ण बन जाता है। स्वामित्व ही तय करता है कि वह समाज, समाज विकास की किस अवस्था में खड़ा है। सामन्ती समाज है कि पूंजीवादी, इसी तरह से उत्पादन के साधनों के स्वामित्व की उत्पादन में लोगों की भूमिका व उनके आपसी सम्बन्ध तथा उत्पाद के वितरण के स्वरूप को भी निर्धारित करने में कारगर भूमिका होती है। वस्तुतः उत्पादन के साधनों का स्वामित्व ही इन्हें तय करता है।

उत्पादन के साधनों के स्वामित्व का सवाल ही वह केन्द्रीय सवाल है जिसे उत्पादक शक्तियों के पैरोकार मुख्य तौर पर नजरअंदाज करते हैं। इसे उठाने से या तो परहेज करते हैं या गोल-मोल जवाब देते हैं। यह सवाल क्रांति का केन्द्रीय सवाल है। पूंजीवादी समाज में उत्पादन के साधनों पर पूंजीपति वर्ग का कब्जा होता है। और मजदूर वर्ग का उत्पादन के साधनों पर कब्जा बगैर क्रांति के सम्भव नहीं है। उत्पादन के साधनों के स्वामित्व का सवाल उठाये बगैर उत्पादक शक्तियों विकास का प्रलाप एकतरफा तौर पर जारी रखा जा सकता है। असल में यहीं से यह तय हो रहा होता है कि आप किस वर्ग के प्रतिनिधि हैं और किस वर्ग की सेवा करना चाहते हैं। क्योंकि कोई भी इस तरह से 'मार्क्सवादी' बने रहते हुए पूंजीवादी व्यवस्था का पैरोकार बन सकता है। हमारे देश की संशोधनवादी पार्टियां और उनसे जुड़े हुए बुद्धिजीवी इस संदर्भ में यही तर्क प्रस्तुत कर रहे होते हैं।

विशेष आर्थिक क्षेत्र से जुड़ी बहस में उत्पादक शक्तियों के विकास वाली शब्दावली के स्थान पर जिस शब्दावली का प्रयोग हो रहा है, वह है, देश के औद्योगी- करण का प्रश्न। कुछ अन्य, औद्योगीकरण के साथ कृषि के पिछड़ेपन का प्रश्न भी उठाते हैं। 'मार्क्सवादियों' के इतर बुर्जुआ वर्ग के कई सुलझे हुए प्रतिनिधि भी इस सवाल को उठाते हैं और उदाहरण के तौर पर चीन को प्रस्तुत किया जाता है। यह बात फैलायी जाती है कि चीन ने न केवल अपने औद्योगीकरण की गति को तीव्र रखा हुआ है बल्कि कृषि में भी उच्च्च विकास दर को कायम रखा है। चीन के उदाहरण के सम्बन्ध में चर्चा इस लेख में आगे की जायेगी। परन्तु चीन के उदाहरण को औद्योगीकरण, कृषि क्षेत्र में विकास, विशेष आर्थिक क्षेत्र की नीति के सफल प्रयोग, विशाल पैमाने पर पूंजी निवेश और बढ़ती हुई आर्थिक शक्ति के रूप में प्रस्तुत करने वाले उत्पादन के साधनों के स्वामित्व या उत्पादन सम्बन्धों के प्रश्न को नहीं उठाते हैं और एक मायने में चीन का नकली समाजवाद इस सब पर आसानी से पर्दा डाल देता है। 'लाल सलाम' के अंक-13 में 'पूंजीवादी पुनर्स्थापना के बाद चीन' नामक लेख में इस सम्बन्ध में विस्तार से चर्चा की गयी थी कि चीन में सम्पत्तिवान और सम्पत्तिविहीन लोगों के बीच, शहर और देहात के बीच कैसे अन्तर तीव्र होते जा रहे हैं। बढ़ती बेरोजगारी, तबाह होते किसान और मजदूरों के तीव्र होते शोषण के कारण चीनी समाज में मजदूरों, किसानों के संघर्ष समय-समय पर फूट पड़ रहे हैं।

माकपा और उसके वाम मोर्चे के अन्य घटक तथा उनसे जुड़े बुद्धिजीवी पहले-पहल सेज का विरोध कर रहे थे परन्तु थोड़े समय में ही पूंजीपति वर्ग के इन वफादार सेवकों ने सेज की नीति का समर्थन करते हुए कई सुझाव दिये ताकि वह अधिक 'सुसंगत' हो सके। सेज के जरिये औद्योगीकरण हो, ऐसी जमीन का अधिग्रहण न हो जो कि उपजाऊ हो (ऐसी भूमि को प्राथमिकता दी जाये जो या तो बंजर हो या फिर एक फसलीय हो), बहु उत्पाद वाले सेज का क्षेत्रफल 2000 हेक्टेयर से अधिक न हो, किसानों को भूमि का उचित मुआवजा मिले, देश के पहले से औद्योगीकृत प्रान्तों के स्थान पर बिहार या उत्तर-पूर्व जैसे गैर-औद्योगीकृत प्रान्तों में सेज लगाये जायें, राजस्व की लूट न हो, सेज में श्रम कानूनों का पालन हो, इत्यादि के जरिये माकपा और उनसे जुड़े बुद्धिजीवियों ने केन्द्र सरकार द्वारा पारित विशेष आर्थिक क्षेत्र एक्ट 2005 (Special Economic Zones Act, 2005) में सुधार के प्रस्ताव रखे।

नंदीग्राम के घटनाक्रम साथ ही देश भर में विभिन्न स्थानों में भूमि अधिग्रहण के तीव्र विरोध और माकपा जैसे पूंजीवाद के 'सुलझे' हुए समर्थकों की सलाह के मद्देनजर केन्द्र सरकार ने सेज एक्ट में कुछ सुधार किये। जिनमें से प्रमुख हैं; सेज का कम से कम 35 फीसदी क्षेत्र उत्पादक कार्यों (Processing area) के लिए होगा (माकपा की मांग 50 फीसदी की थी), प्राइवेट डेवलेपर के एवज में प्रान्त सरकार भूमि का अधिग्रहण नहीं करेगी, सेज का क्षेत्र 5000 हेक्टेयर से अधिक का नहीं होगा। दिसम्बर माह में केन्द्र सरकार की ओर से ऐसे बयान आने लगे हैं कि वह बहु उत्पाद व रिहायश सुविधा से युक्त सेज में सीलिंग सीमा को बढ़ाने के बारे में सोच रही है। साफ है कि सरकार ने भूमि सीलिंग को कम

करने का एक पैंतरा चला था। 25000 हेक्टेयर से अधिक के सेज जिन्हें अम्बानी व डी०एल०एफ० जैसे बना रहे थे उस पर इस सीलिंग से रोक लगती है।

माकपा, भाकपा और इनसे जुड़े बुद्धिजीवी सेज की बुर्जुआ नीति को किन्तु-परन्तु के साथ काफी पहले ही स्वीकार कर चुके हैं। यहां जो तर्क पद्धति है, वह यह कि वैश्वीकरण के दौर में ये आवश्यक हैं बशर्ते कि ये चीन की तर्ज पर विकसित हों, औद्योगीकरण के लिए जरूरी हैं, विश्व बाजार में प्रतियोगिता के लिए आवश्यक हैं, ... इत्यादि। यहां हम पाते हैं कि औद्योगीकरण, वैश्वीकरण, व्यापार, प्रतियोगिता के नाम पर ये संशोधनवादी इन नीतियों की अपरिहार्यता को सिद्ध करते हैं। अक्सर ही ये यह सवाल नहीं उठाते हैं कि इन नीतियों से देशी-विदेशी पूंजीपतियों और साम्राज्यवादियों को क्या लाभ हैं? यानी कि अगर लेख में उपयोग की गई शब्दावली के संदर्भ में कहें तो स्वामित्व के सम्बन्धों या उत्पादन सम्बन्धों को नहीं उठाते हैं। क्रांतिकारी कार्य को दशकों पहले छोड़ चुके लोगों के लिए यह स्वाभाविक है। परन्तु दिक्कत तलब स्थिति तब उत्पन्न हो जाती है जब इनके तर्कों को क्रांतिकारी कार्य में लगे लोग या ऐसा इरादा जाहिर करने वाले भी ग्रहण कर लेते हैं।

पूंजीवाद की प्रगतिशीलता से आत्मविभोर लोग अक्सर भूल जाते हैं कि पूंजीवाद की वर्तमान अवस्था उसकी चरम अवस्था है। यह पूंजीवाद की उच्चतम अवस्था साम्राज्यवाद का युग है। और यह घोर प्रतिक्रियावाद का युग है। अभी हम इस बात पर नहीं जा रहे हैं कि ये सिर्फ साम्राज्यवाद का नहीं बल्कि सर्वहारा क्रांतियों का युग भी है। यहां जो सवाल पूछे जाने चाहिये वे ये कि क्या 'सेज' जैसी नीतियों (सेज अपने आप में भारतीय पूंजीपति वर्ग की नयी आर्थिक नीतियों का हिस्सा भर हैं) की आलोचना से, इन आलोचनाओं से इन नीतियों में होने वाले सुधार से क्या भारतीय पूंजीवाद में परिवर्तन सम्भव है। भारतीय पूंजीवाद के अंतर्विरोधों के प्रति क्या रुख यह नहीं होना चाहिए कि हम इन अंतर्विरोधों को तीव्र और गहरा बनाने का प्रयास करें? इस क्रांतिकारी रुख के विपरीत संशोधनवादी इन अंतर्विरोधों को धूमिल करने की कोशिश में अपनी पूरी ऊर्जा लगा देते हैं। माकपा-भाकपा जैसे संशोधनवादी अपनी आलोचना द्वारा यही काम आम तौर पर करते हैं। सेज के मामले में वे यही काम खास तौर पर कर रहे हैं। वे कई मामलों में तो बुर्जुआ पार्टियों से भी ज्यादा बुर्जुआ के दूरगामी हितों की रक्षा करने में संलग्न रहते हैं। सेज की इनकी आलोचना की तरह ही कुछ ऐसी स्थिति तब भी पैदा हो गयी थी जब सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों के निजीकरण के समय माकपा-भाकपा मार्का आलोचना को कई क्रांतिकारियों ने अंगीकार कर लिया था। भाकपा-माकपा इन्हें बुर्जुआ प्रष्ठिानों के स्थान पर समाजवादी प्रतिष्ठानों के प्रतिरूप के रूप में प्रस्तुत करती रही थीं।

उत्पादक शक्तियों के विकास सम्बन्धी बहस को एक अन्य ढंग से भी समझने की आवश्यकता है। हमारे देश में नव-जनवादी क्रांति की मंजिल मानने वालों का कहना है कि देश की उत्पादक शक्तियां पिछड़ी हुई हैं और अर्द्ध सामन्ती-अर्द्ध औपनिवेशिक बन्धनों में जकड़ी हुई हैं। सर्वहारा के नेतृत्व में होने वाली जनवादी क्रांति के जरिये देश की उत्पादक शक्तियां मुक्त होंगी और तब कहीं जाकर समाजवाद का रास्ता प्रशस्त होगा। इस धारा के लोग यह नहीं मानते हैं कि देश में मूलतः और मुख्यतः पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्ध कायम हो गये हैं। उत्पादन के साधनों के स्वामित्व के सवाल पर वे यह चिह्नित नहीं करते हैं कि इनका चरित्र पूंजीवादी स्वामित्व का है। इस सबका नतीजा यह निकलता है कि उनके द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाला "संघर्ष का नारा" भारत में मौजूदा उत्पादन सम्बन्धों से मेल नहीं खाता है और अक्सर समाज में जो संघर्ष उठ खड़े होते हैं वे भारत में मौजूदा उत्पादन सम्बन्धों के चरित्र की पैदाइश होते हैं। समाज में चल रहे वर्ग संघर्ष के परिणाम होते हैं। यह वर्ग संघर्ष आम तौर पर श्रम और पूंजी के विपरीत हितों को लेकर छिड़ा रहता है या छिड़ता है। खुद भी वे जिन संघर्षों में भागीदारी करते व नेतृत्व देते हैं वह इस बात की पुष्टि करते हैं कि संघर्ष के मुद्दे पूंजीवादी समाज के वर्गीय अन्तर्विरोधों से जन्म ले रहे हैं।

सेज वाले मामले में भी यही हो रहा है। उत्पादन सम्बन्धों के सही मूल्यांकन के अभाव में ये साथी पूरी किसान आबादी को उत्पीड़ित-शोषित के रूप में प्रस्तुत करते हैं और इस तरह से छोटे-मझोले किसानों सहित देहाती सर्वहारा-अर्द्ध सर्वहारा को धनी किसानों और फार्मरों का पिछलग्गू बना देते हैं। फार्मर व धनी किसान देहाती पूंजीपति वर्ग के हिस्से हैं। ये परजीवी वर्ग हैं। इनके और शेष आबादी के हित एक-दूसरे के विपरीत हैं। शहरी, एकाधिकारी व साम्राज्यवादी पूंजी से संघर्ष के दौरान यह परजीवी वर्ग किसान आबादी व सर्वहारा को अपने पीछे लामबन्द करने की कोशिश करता है ताकि वे इस जन गोलबंदी के जरिये सेज के निर्माण के दौरान भूमि की अधिक से अधिक कीमत पा सकें तथा सेज स्थल पर होने वाले निर्माण कार्यों व अन्य सेवाओं व गतिविधियों में ठेके प्राप्त कर सकें। उन भारी लाभों में हिस्सेदारी पा सकें जो शहरी, देशी-विदेशी पूंजीपतियों को प्राप्त हो रहे हैं। इस सवाल पर कुछ अन्य पहलुओं को उठाते हुए चर्चा आगे की जायेगी।

पूरी दुनिया में और उसके हिस्से के तौर पर भारत में भी पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्ध कायम हैं (अपवाद स्वरूप ही या कुछ बेहद पिछड़े हुए इलाकों में ही प्राक्-पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्ध मौजूद हैं। इसी तरह से भारत में भी सामन्ती अवशेष व उसके पूर्व के अवशेष कुछ स्थानों पर मौजूद हैं)। दुनिया के पैमाने पर सवाल सामन्तवाद से पूंजीवाद में संक्रमण का नहीं है बल्कि पूंजीवाद से समाजवाद में संक्रमण का है। आज दुनिया में पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्ध उत्पादक शक्तियों के विकास में अवरोध बनकर खड़े हैं न कि सामन्ती या अन्य प्राक्-पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्ध। इसलिए जब कोई उत्पादक शक्तियों के विकास का सवाल बिना उत्पादक सम्बन्धों की चर्चा किये उठाता है तो उसका मकसद साफ है। वह मौजूदा उत्पादन सम्बन्धों को बनाकर रखना चाहता है। वह मौजूदा उत्पादन सम्बन्धों को बनाये रखते हुए उत्पादक शक्तियों का विकास चाहता है। भारत के संदर्भ में सेज, औद्योगीकरण आदि का अर्थ यही निकलता है कि उत्पादक शक्तियों का विकास मौजूदा पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्धों को बनाये रखते हुए होना है। यानी उत्पादन के साधनों पर पूंजीपति वर्ग का कब्जा, देशी-विदेशी व साम्राज्यवादी पूंजी द्वारा मजदूर तथा अन्य मेहनतकशों का और अधिक तीव्रता से शोषण-उत्पीड़न, मझोले-छोटे किसानों की जमीन से जबरदस्ती बेदखली व भूमि का चन्द हाथों में संकेन्द्रण, छोटे रकबों को विशाल रकबों में बदलने की तैयारी, छोटे उत्पादकों की तबाही-बर्बादी। यही हाल व्यापार व अन्य सेवा क्षेत्र में लगी छोटी पूंजी के मालिकों का भी होना है। पूंजीवाद इसके इतर और क्या होता है? कम्युनिस्ट क्रांतिकारी जानते हैं कि यह एक ऐतिहासिक प्रक्रिया है, जो कि जारी है।

हमारा काम इस ऐतिहासिक प्रक्रिया के खैरमकदम में लगे रहने का नहीं है। हमारा काम एक निम्न पूंजीवादी सिद्धान्तकार की तरह दरिद्रता पर रोने-बिसूरने और उस पर हाहाकार मचाने का नहीं है, बल्कि एक मार्क्सवादी की तरह इसका सही विश्लेषण प्रस्तुत करने तथा उसके अनुरूप कार्यवाही करने का है जिसके अनुसार समाज में अगर सर्वहाराओं की तादाद बढ़ रही है तो इसका अर्थ यह भी है कि पूंजीवाद की कब्र खोदने वालों की संख्या भी बढ़ रही है। साथ ही मार्क्सवाद हमें यह भी सिखाता है कि इस प्रक्रिया को हम एक वस्तुगत यथार्थ के बतौर स्वीकारते हैं परन्तु इस प्रक्रिया के खिलाफ हम निरन्तर संघर्ष भी विकसित करते हैं ताकि अधिक से अधिक आबादी को दरिद्रता के दलदल में धकेलने से बचा सकें। तात्कालिक राहत की लड़ाई लड़ते वक्त हमें मार्क्सवादी क्रांतिकारी परिप्रेक्ष्य को हमेशा ध्यान रखना होगा नहीं तो अर्थवाद, सुधारवाद, कानूनवाद के फेर में फंस जायेंगे। वहीं मात्र 'क्रांतिकारी परिप्रेक्ष्य' का प्रचार आम जनता के दैनंदिन जीवन से सरोकार न रखने वाले निष्क्रिय उग्र परिवर्तनवादी समूह में तब्दील होने के बराबर होगा।

यहीं यह बात भी याद रखने की है कि सर्वहारा की पांतों में शामिल होने वाले अधिकांश लोग गरीब किसानों, दस्तकारों, निम्न पूंजीपति वर्ग के हिस्सों से आते हैं। समाजवादी क्रांति गरीब किसानों को साथ लाने तथा मझोले किसान, निम्न पूंजीपति वर्ग को तटस्थ बनाते हुए सर्वहारा के नेतृत्व में सम्पन्न होगी। क्योंकि दरिद्र होने वाली अधिकांश आबादी क्रांति की स्वाभाविक संश्रयकारी है अतः सर्वहारा वर्ग और उसकी पार्टी इसके सम्बन्ध में अपनी नीति समाजवादी क्रांति की आम रणनीतिक लाइन से तय करती है।

प्रूदों की तरह के निम्न पूंजीवादी विश्लेषक दरिद्रीकरण तो देखते हैं परन्तु उसके भीतर के विध्वंसकारी, क्रांतिकारी तत्व को नहीं पहचान पाते हैं। इसलिए उनके द्वारा प्रस्तावित नीतियां व योजनाएं ऐसी होती हैं जो दरिद्र होती आबादी में भ्रमों का निर्माण करती हैं। उनके बीच इस बात का प्रचार करती हैं कि पूंजीवाद के दायरे में उनका भला हो सकता है बशर्ते कि सरकार को नीतियां बदलने को बाध्य किया जाए या कि फलां नीति ऐसी हो ... ...। कभी-कभार ऐसे प्रयासों से कुछ हासिल हो जाए तो यह जमीन बहुत पुख्ता हो जाती है। सेज, वैश्वीकरण जैसी पूंजीवादी नीतियों का विरोध करने वालों में ऐसे लोगों की संख्या अच्छी-खासी है। मीडिया में भी आये दिन ऐसे लोग अपना विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं। जाने-अनजाने ये विश्लेषक और इनके द्वारा प्रस्तुत समाधान क्रांतिकारी कार्य में लगे लोगों के चिंतन व विश्लेषण का हिस्सा बन जाते हैं। कई दफा इन लोगों या संगठनों के साथ की जाने वाली संयुक्त कार्यवाही भी इस तरह के प्रचार का सुगम साधन बन जाती है। अतः ऐसे मौकों पर अति आवश्यक है कि अपने मत पर दृढ़तापूर्वक खड़े होकर उसका प्रचार किया जाय तथा बुर्जुआ, निम्न बुर्जुआ विचारों व कार्यवाहियों के प्रति सचेत रहा जाय।

यहां एक अन्य दृष्टिकोण से भी विचार करने की आवश्यकता है। अक्सर ही कुछ क्रांतिकारी अथवा मार्क्सवादी विद्वान मार्क्स की मुक्त व्यापार की बातों का हवाला देते हुए दावा करते हैं कि जो मुक्त व्यापार या वैश्वीकरण का विरोध करते हैं वे मार्क्सवाद की बुनियादी बातों को नहीं समझते हैं।

सितम्बर 1847 में मार्क्स ने ब्रुसेल्स में एक भाषण के अन्त में यह बात कुछ इस तरह से कही थी :

> "तो क्या हम मुक्त व्यापार के विरोध में हैं? नहीं, हम मुक्त व्यापार के पक्ष में हैं, क्योंकि मुक्त व्यापार के द्वारा सभी आर्थिक नियम, उनके झंझावाती अंतर्विरोधों के साथ, और बड़े पैमाने पर, और बड़े क्षेत्र में, पृथ्वी के सभी क्षेत्रों में क्रियाशील होंगे, और क्योंकि सभी अंतर्विरोधों को एक ही समूह में एकत्र करने से वे

एक-दूसरे के आमने-सामने होंगे फलतः इस संघर्ष के अवश्यम्भावी परिणाम के बतौर सर्वहारा की मुक्ति सम्भव होगी।”

(Speech of Dr. Marx on Protection, Free Trade, and the Working Classes, 1847 Index-1, News paper index TMEJH)

यहां मार्क्स का यह कथन साफ तौर पर यह स्थापित करता है कि मुक्त व्यापार अपने दीर्घकालिक परिणामों के बतौर पूरी धरती को ही पूंजी और श्रम के सीधे संघर्ष की, आमने-सामने के संघर्ष की भूमि तैयार कर देगा। अन्य अंतर्विरोध पृष्ठभूमि में चले जायेंगे और इस तरह श्रम और पूंजी के इस सीधे संघर्ष के फलस्वरूप सर्वहारा मुक्ति प्रत्यक्ष हो जायेगी। एक अन्य जगह में मार्क्स ने संरक्षणवादी व्यवस्था को सामान्य तौर पर यथास्थितिवादी (**conservative**) तथा मुक्त व्यापार की व्यवस्था को विनाश करने वाला (**destructive**) कहा था। मार्क्स का कहना था कि मुक्त व्यापार राष्ट्रों की सीमाओं को तोड़ता है तथा पूंजीपति और सर्वहारा के अंतर्विरोध को उसके शिखर बिन्दु पर पहुंचाता है तथा सामाजिक क्रांति को तीव्रता प्रदान करता है।

कुछ इसी तरह से लेनिन ने साम्राज्यवाद के सम्बंध में कहा था कि, “अपने आर्थिक सार में साम्राज्यवाद इजारेदार पूंजीवाद है। यह बात स्वयं इतिहास में उसके स्थान को निर्धारित करती है, क्योंकि इजारेदारी, जो खुली होड़ की भूमि पर खुली होड़ से ही पैदा होती है, पूंजीवादी व्यवस्था से एक उच्चतर सामाजिक आर्थिक व्यवस्था में संक्रमण की द्योतक है।” और यहां हमारे लिए जो कार्यभार निकलता है वह यह कि हमें साम्राज्यवाद के द्वारा पैदा किये गये अंतर्विरोधों को और भी उग्र और गहरा बनाना चाहिये ताकि वह शीघ्र से शीघ्र उच्चतर सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था अर्थात समाजवाद में संक्रमित हो सके।

मार्क्स की मुक्त व्यापार तथा संरक्षणवाद के सम्बंध में मुक्त व्यापार की ऐतिहासिक भूमिका सम्बंधी राजनीतिक अवस्थिति को हमारे देश में वैश्वीकरण, सेज के सम्बंध में उद्धृत करके इनको ऐतिहासिक तौर पर प्रगतिशील घोषित करते हुए इनके खिलाफ (वैश्वीकरण, सेज) संघर्ष से किनाराकशी कर ली जाती है। या फिर भ्रम का बवंडर खड़ा करके इन संघर्षों की निरर्थकता साबित कर दी जाती है। संघर्ष को जन्म देना या स्वतःस्फूर्त संघर्षों में नेतृत्व देना, संघर्ष का सच्चा नारा मुहैया कराना, संघर्ष को निम्न पूंजीवादी भटकावों से बचाना जैसे कार्यभार ऐसे व्यक्तियों के लिये नहीं निकलते हैं।

यहां जिस पर गौर करने की और जरूरत है वह यह कि, यहां सवाल न तो मुक्त व्यापार या संरक्षणवाद में से किसी एक का पक्ष लेने का है, न वैश्वीकरण के पक्ष और विपक्ष में खड़े होने का है, न सेज से देश की उत्पादक शक्तियों के विकास या औद्योगीकरण के समर्थक और विरोधी होने का है, बल्कि यह है कि, देशी-विदेशी, साम्राज्यवादी पूंजी के संयुक्त हमले के खिलाफ सर्वहारा और उसके सहयोगी वर्गों (छोटे किसान, मझोले किसान, छोटे उत्पादक व व्यवसायी आदि) के तात्कालिक व दीर्घकालिक संघर्ष विकसित कैसे किये जायें। कैसे आक्रामक पूंजी को बचाव की मुद्रा में लाया जाये और उससे भी बढ़कर कैसे उसके ताबूत में कीलें ठोकीं जायें।

कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों का कार्य सर्वहारा के ऐतिहासिक मिशन को आगे बढ़ाना है कि न कि बुर्जुआ, निम्न बुर्जुआ या संशोधनवादियों द्वारा प्रस्तुत की जानी वाली कार्यसूची (एजेण्डे) के विषयों में उलझ जाना है।

उत्पादक शक्तियों के विकास के सवाल पर इस दृष्टिकोण से भी विचार करने की आवश्यकता है कि सेज जैसी नीति शासक वर्ग द्वारा अख्तियार करने की अवस्था या उसे अस्वीकार करने की अवस्था में, किसमें उत्पादक शक्तियों का अधिक विकास होगा। सेज के भीतर मिलने वाली करों में व्यापक छूटें व सुविधायें पूंजीपति वर्ग को तकनीक व प्रौद्योगिकी के विकास या देश के विभिन्न स्थानों पर उद्योग (या अन्य गतिविधियों) लगाने को बाध्य करने के स्थान पर श्रम सघनता और श्रम कानूनों के लचीलेपन का लाभ उठाने की हैं। सेज में मिलने वाली विशेष छूटें यथा- विभिन्न करों में छूट, मौजूदा श्रम कानूनों की लगभग अनुपस्थिति, नागरिक व श्रमिक संस्थाओं का अभाव तथा सेज में किसी प्रतिनिधि मूलक संस्थाओं की कोई भूमिका न होना आदि बातें ऐसी हैं जो देशी-विदेशी पूंजीपति वर्ग को तकनीक व प्रौद्योगिकी के विकास के स्थान पर श्रम के तीव्र दोहन की ओर ले जायेंगी। करों में छूट व निवेश सम्बंधी व्यापक सुविधाएं (जिसकी चर्चा आगे की जायेगी) के कारण यह देशी व विदेशी बाजार में उतरेगा। साम्राज्यवादी पूंजी को अति मुनाफे की गारण्टी देगा। जाहिर है सेज के सम्बंध में उत्पादक शक्तियों के विकास का तर्क इस तरह से देशी-विदेशी पूंजी के हितों की पैरोकारी बन जाता है। यहां एक बात और भी है कि केन्द्र व राज्य सरकारें सेज के कारण होने वाले भारी राजस्व घाटे को जनता पर और अधिक कर लाद कर पूरा करेंगी। यह प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों तरीकों से होगा। प्रत्यक्षतः करों का बोझ बढ़ेगा और अप्रत्यक्षतः जनता के ‘सामाजिक कल्याण’ पर खर्च की जाने वाली निधि और सिकुड़ जायेगी।

II
सेज के सम्बंध में कुछ सामान्य बातें

विशेष आर्थिक क्षेत्रों का निर्माण पूरी दुनिया में बड़े पैमाने पर हो रहा है। यह कितने बड़े पैमाने पर हो रहा है इसका अंदाज एक तथ्य से लगाया जा सकता है। इस तथ्य के अनुसार सन् 1986 में 47 देशों में ऐसे क्षेत्रों की संख्या मात्र 176 थी परन्तु 2003 आते-आते 116 देशों में ऐसे क्षेत्र 3000 थे। जहां तक भारत का सवाल है अभी तक 765 विशेष आर्थिक क्षेत्र बनने की प्रक्रिया में हैं।

भारत में विशेष आर्थिक क्षेत्र की नीति 2005 में संसद में पारित एक अधिनियम 'विशेष आर्थिक क्षेत्र अधिनियम' से अस्तित्व में आयी। फरवरी 2006 में भारत सरकार ने इस अधिनियम के अनुरूप कई नियमों की घोषणा की। इन नियमों के तहत मार्च 2006 में बोर्ड ऑफ एप्रूवल्स (Board of Approvals) का गठन किया जिसने अपनी पहली ही बैठक में 166 प्रस्तावों में से 148 प्रस्ताव स्वीकार कर लिये।

विशेष आर्थिक क्षेत्र की एक 'विकास यात्रा' रही है। 1965 में भारत में काण्डला में सेज के पूर्व अवतार एक्सपोर्ट प्रोसेसिंग जोन (E P Z) का निर्माण किया गया था। सन् 2000 में ई.पी.जेड. को एस.ई.जेड. में बदल दिया गया था। 2004 के पूर्व तक इन ई.पी.जेड. की संख्या मात्र 14 थी। आज सेज के रूप में विकसित करके उसे कहीं 1000 की संख्या तक भारत का शासक वर्ग पहुंचाना चाहता है। इन ई.पी.जेड. की भूमिका निर्यात में कितनी रही है इसका अंदाज एक तथ्य से लगाया जा सकता है। 2004 में भारत का विश्व निर्यात में हिस्सा मात्र 0.8% था जिसमें इन ई.पी.जेड. या बाद में एस.ई.जेड. का हिस्सा 5% था।

भारत सरकार का दावा है कि 2007 के अंत तक सेज में एक लाख करोड़ रुपये से अधिक का निवेश होगा जिसमें लगभग एक चौथाई प्रत्यक्ष विदेशी निवेश होगा। यह कुल निवेश लगभग पचास लाख प्रत्यक्ष रोजगार उत्पन्न करेगा।

भारत सरकार इन क्षेत्रों को 'विकास के इंजन' के नाम से प्रस्तुत रही है। सरकार का दावा है कि ये विकास के इंजन इसलिए साबित होंगे क्योंकि इन स्थानों पर बुनियादी अवरचनात्मक सुविधाओं का अभाव नहीं होगा, नौकरशाही की दखलन्दाजी नहीं होगी, करों का जंजाल नहीं होगा, कठोर श्रम नीतियां नहीं होंगी।

सेज में लगने वाली इकाइयों को इस एक्ट में मिलने वाली प्रमुख छूटें इस प्रकार हैं: ये क्षेत्र कर मुक्त होंगे; इन्हें व्यापार और करों के मामले में एक विदेशी क्षेत्र की तरह माना जायेगा; ये लाइसेन्स मुक्त आयात कर सकते हैं; आयात में किसी तरह का सीमा कर नहीं देना होगा; घरेलू बाजार से पूंजीगत सामानों कच्चे मालों को लेने पर उत्पाद कर नहीं देना होगा; विशेष आर्थिक क्षेत्र को घरेलू कर क्षेत्र (Domestic Tariff Area- D T A) से भेजे जाने वाले माल को निर्यात माना जायेगा; सेज में पांच वर्ष के लिये आयकर में 100 फीसदी छूट होगी और उसके अगले दो वर्ष के लिए 50 फीसदी तथा लाभ का पचास फीसदी पुनः निवेश करने पर अगले तीन वर्ष के लिए यह छूट जारी रहेगी; कुछ क्षेत्रों को छोड़कर सौ फीसदी प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की छूट तथा स्मॉल स्केल इण्डस्ट्रीज के क्षेत्र में विदेशी निवेश की मात्रा में कोई पाबंदी नहीं; स्मॉल स्केल इण्डस्ट्रीज के लिए लाइसेन्स की आवश्यकता नहीं; विदेश स्थित संस्थाओं को भी सब-कान्ट्रेक्ट किया जा सकता है; इत्यादि।

सेज में कार्यरत बैंकों की शाखाओं को ऑफ शोर बैंकिंग इकाई का दर्जा देते हुए उन्हें पहले तीन साल के लिये आयकर में सौ फीसदी तथा उसके अगले दो साल के लिए 50 फीसदी छूट होगी।

सेज विकसित करने वाले डेवलपर्स को कर मुक्त आयात की छूट। आयकर में 10 वर्ष से 15 वर्ष की छूट; टाउनशिप विकसित करने के लिये विदेशी धन जुटाने की छूट; सेज में विकसित किये गये प्लॉट को पास की गयी इकाइयों को वाणिज्यिक आधार पर बेचने की छूट; बहु उत्पाद आधारित सेज का कम से कम 50 फीसदी क्षेत्र 'उत्पादक' कार्यवाहियों के लिए होना चाहिए तथा शेष क्षेत्र में 'गैर-उत्पादक' कार्यवाहियां की जा सकती हैं यथा- रेस्तरां, होटल, शिक्षण संस्थाएं तथा रिहायशी क्षेत्र आदि बनाये जा सकते हैं।

सेज में स्थानीय स्तर पर न तो कोई चुनी हुई सरकार होगी और न ही नागरिक संस्थाएं होंगी, इसके स्थान पर एक विकास आयुक्त (डेवलपमेंट कमिश्नर) होगा जो कि भारत सरकार में कम से कम डिप्टी सेक्रेटरी के स्तर का होगा। इस विकास आयुक्त को, अन्य अधिकारियों और कर्मचारियों के लिए वेतन, भत्ते, सुविधायें (यथा- छुट्टी, पेंशन, प्रोविडेण्ट फण्ड), नौकरी की शर्तें वही होंगी जो शेष देश में होंगी (यहां गौर करने वाली बात यह है कि सरकारी अधिकारियों व कर्मचारियों को तो सब अधिकार, सुविधाएं प्राप्त होंगी परन्तु मजदूरों के सम्बंध में सरकार अपने ही

कानूनों को लागू करने को तैयार नहीं है)। डेवलपमेंट कमिश्नर के पास सभी प्रशासनिक अधिकार होंगे तथा उसके पास अधिकारियों व कर्मचारियों की निगरानी करने सहित सभी प्राधिकार होंगे।

सेज को नौकरशाही, लाल फीताशाही, लाइसेंस राज से मुक्त करने के लिये सिंगल विन्डो क्लीयरेंस की सुविधा दी जायेगी।

प्रत्येक सेज में एक एप्रूवल कमेटी होगी। डेवलपमेंट कमिश्नर इसका चेयर पर्सन होगा। इसके सदस्यों में दो केन्द्र सरकार द्वारा नामित, दो अधिकारी राजस्व से सम्बन्धित, एक सदस्य आर्थिक मामलों को देखने वाला केन्द्र सरकार से नामित, दो अधिकारी सम्बंधित राज्य से तथा एक सदस्य सम्बन्धित डेवलपर्स की ओर से होगा। एप्रूवल कमेटी का कोरम आधे सदस्यों की उपस्थिति से पूरा हो जायेगा और उपस्थित सदस्यों की सहमति से ही निर्णय लिये जायेंगे (यहां भी गौर करने वाली बात यह है इस कमेटी में मजदूरों या अन्य नागरिकों का कोई प्रतिनिधित्व नहीं होगा। यही स्थिति सेज सम्बन्धित सभी निकायों में है)।

उस सेज के डेवलमेंट कमिश्नर के द्वारा जारी किये गये पहचान पत्र के बगैर कोई भी व्यक्ति सम्बन्धित सेज में प्रवेश नहीं कर सकता है। पहचान पत्र को विशेष तौर पर बनाये गये प्रारूप के अनुसार होना चाहिए तथा वह पांच वर्ष के लिये ही मान्य होगा। अस्थायी कार्ड भी इसी के द्वारा जारी होंगे और सेज के गेट पर इनकी आवाजाही आदि का रिकार्ड रखा जायेगा।

जाहिर सी बात है कि भारत का शासक वर्ग दुनिया के अन्य देशों की तरह ही देशी-विदेशी पूंजीपति वर्ग को मजदूरों व शेष मेहनतकश आबादी की कीमत पर विशेष छूटें व सुविधाएं दे रहा है। देश के भीतर बनाये जाने वाले 'विदेशी क्षेत्र' पूंजी के ऐसे मुक्त क्षेत्र हैं जहां श्रम का निर्मम शोषण व दमन होना है। क्रांतिकारी संगठनों व संघर्षों के अभाव में शासक वर्ग अपने संकट को जनता के ऊपर डालने में सफल हो रहा है। शासक वर्ग श्रम की कीमत पर दुनिया में मौजूद भीषण प्रतिद्वन्द्विता में वरीयता हासिल करने की कोशिश कर रहा है। लगातार गिरती मजदूरी, मौजूदा श्रम कानूनों का लागू न होना, सामाजिक असुरक्षा मजदूरों को और बुरी कार्य व जीवन परिस्थितियों में धकेल रही हैं। बेरोजगारी, भुखमरी, दरिद्रता, कुस्वास्थ्य के कारण मजदूर वर्ग का जीवन गहरे संकट का शिकार हो रहा है। सेज देशी-विदेशी पूंजी के श्रम पर तीखे हमले की आम नीतियों, वैश्वीकरण का ही हिस्सा हैं। पूंजीपति वर्ग की वैश्विक स्तर पर कार्यनीति मजदूरों को और अधिक निचोड़ने की है।

सेज की तर्ज पर ही 'विशेष कृषि क्षेत्र' (Special Agriculture Zone- SAZ) भी स्थापित किये जाने का प्रस्ताव है। इसमें विशेष अधिकारी द्वारा अनुमति प्रदान करने पर कान्ट्रेक्ट फार्मिंग (Contract Farming) हो सकेगी और ऐसे क्षेत्रों में बीज, खाद, कृषि उपकरणों के सम्बन्ध में लगभग वही छूट और सुविधाएं दी जानी हैं जो सेज से सम्बन्धित हैं। यहां यह बात गौरतलब है कि भारत का शासक वर्ग देश में वर्तमान कृषि संकट के समाधान के रूप में इन्हें प्रस्तुत कर रहा है। 'दूसरी हरित क्रांति' के 'मॉडल' के रूप बतलाये जाने वाले 'विशेष कृषि क्षेत्र' पूंजीवादी फार्मरों, देहाती पूंजीपतियों व धनी किसानों के हितों को साधने वाले हैं। इसके तहत ग्रामीण सर्वहारा, अर्द्ध-सर्वहारा, गरीब व मझोले किसानों के खिलाफ षड्यंत्र रचा जा रहा है।

III
विकास का चरित्र पूंजीवादी है

हमारे देश के क्रांतिकारी आंदोलन के प्रचार साहित्य में अक्सर देश में हो रहे पूंजीवादी विकास की आलोचना इस दृष्टिकोण से की जाती है कि मानो वर्तमान समाज में होने वाला विकास किसी समाजवादी समाज में हो रहा है। अक्सर शिकायतें दर्ज की जाती हैं कि 'विकास के नाम पर डाकेजनी हो रही है'; कि 'औद्योगिक घरानों को हजारों एकड़ जमीन उपलब्ध काराने के लिए सरकारें जनता को, खासकर आदिवासियों, किसानों को अपनी जमीन से बेदखल करती जा रही हैं'; कि 'उद्योग लगाने के लिए और संसाधनों की सस्ती लूट के लिए इन प्रदेशों के लाखों आदिवासियों के जल, जंगल, जमीन को हड़प लिया जा रहा है'; कि 'उन्हें उद्योगों के निर्माण के लिए सस्ती श्रम शक्ति में तब्दील किया जा रहा है'; कि 'औद्योगीकरण, विकास के नाम पर विस्थापन आज एक विकराल मुद्दा बना हुआ है'; कि 'पर्यावरण की परवाह किये बगैर जंगलों को धड़ल्ले से साफ करने की अनुमति दी जा रही है'; कि 'जनता के सर्वनाश की कीमत पर देशी दलाल-बड़े पूंजीपतियों और साम्राज्यवादियों को जल, जंगल, जमीन तथा संसाधन सौंपे जा रहे हैं'; कि 'इन विशेष आर्थिक क्षेत्रों में चूंकि मशीनीकरण, कम्प्यूटरीकरण पर आधारित आधुनिक उद्यम लग रहे हैं, अतः रोजगार के अवसर

बहुत ही सीमित मात्रा में उपलब्ध हो सकते हैं, जिससे बेरोजगारी की समस्या के हल होने की संभावना दूर-दूर तक दिखायी नहीं देती है'; कि 'साम्राज्यवाद के युग में भारत का पूंजीपति वर्ग पूंजीवादी विकास के क्रांतिकारी रास्ते को न तो अपनाना चाहता है और न अपना सकता है'। इसी तरह मार्क्सवाद के नाम पर ऐसी प्रस्थापनाएं दी जाती हैं जो कि पूर्णतः गलत हैं। कहा जाता है कि 'साम्राज्यवाद के युग में उस पर निर्भर देशों में पूंजीवाद का विकास नहीं हो सकता है' या फिर यह कि '... विकास जिसके साथ औद्योगीकरण शब्द जुड़ा हुआ है के संदर्भ में क्या हो रहा है? कुछ हद तक कुछ निर्भर देशों में औद्योगिक विकास हो सकता है परन्तु क्या यह सामाजिक विकास को जन्म दे सकता या समाज का वास्तविक अर्थों में विकास हो सकता है।' इसी तरह के कई अन्य तर्क या बातें।

एक पत्रिका ने इस सवाल को गहराई प्रदान करते हुए औद्योगीकरण के साथ जुड़ी हिंसा के प्रश्न को उठाते हुए बताया कि इतिहास में पूर्व पूंजीवादी समाजों में सामाजिक परिवर्तन के दौरान दो तरह की हिंसा दिखायी देती हैं। एक हिंसा जो शासकों के द्वारा जनता के खिलाफ होती है तथा दूसरी तरह की हिंसा जो जनता द्वारा पूर्व शासकों के खिलाफ दिखायी देती है। पत्रिका पहले के उदाहरण के तौर पर इंग्लैण्ड तथा दूसरे के लिए फ्रांस को प्रस्तुत करती है। वह सवाल उठाती है कि इतिहास में औद्योगीकरण के साथ हिंसा जुड़ी हुई है। परन्तु प्रश्न यह है कि किस वर्ग की हिंसा किस वर्ग के खिलाफ है? इसी जगह पर पत्रिका जर्मनी में जुंकर पथ विकास की बात उठाती है तथा अमेरिका में पूंजीवादी विकास में लिंकन के गृहयुद्ध की चर्चा छेड़ती है।

इस तरह से सवाल ठीक उस जगह पहुंच जाता है जहां उसे पहुंच जाना चाहिये अर्थात् दुनिया में पूंजीवाद का विकास कैसे हुआ है। न जाने कैसे हमारे देश के क्रांतिकारी साहित्य में यह हुआ कि पूंजीवादी विकास के फ्रांसीसी रास्ते की चर्चा तो आम रही परन्तु प्रशियाई रास्ते से तीसरी दुनिया में होने वाले पूंजीवादी विकास को स्वीकारा ही नहीं जाता है। और इस तरह से यह हुआ कि इतिहास जिस तरह से घटा है उसे उस रूप में लेने के बजाय अपनी 'क्रांतिकारिता' को इतिहास पर बलात् लाद दिया गया है। इसका एक नतीजा यह भी निकला कि पूंजीवाद, पूंजीपति वर्ग के बारे में हजारों किस्म के भ्रमों और मिथकों का निर्माण कर लिया गया। कदाचित् इसी का नतीजा यह भी हुआ कि भारत में पूंजीवाद की हजारों अभिव्यक्तियों के बावजूद यहां पूंजीवाद नहीं स्वीकारा जाता है। कई क्रांतिकारी संगठन यह स्वीकार ही नहीं कर पाते हैं कि साम्राज्यवाद के रहते उस पर निर्भर देश में पूंजीवाद का विकास हो सकता है। कोई-कोई इस बात को स्वीकारता है तो वह कह उठता है कि यह वास्तविक अर्थों में विकास नहीं है। और हद तो इस उलटबांसी की है कि देश में पूंजीवाद का विकास इसलिए नहीं हुआ क्योंकि किसानों के बीच क्रांतिकारी ढंग से भूमि का वितरण नहीं हुआ और फिर यह, देखिये! क्या हो रहा है? विकास के नाम पर किसानों की भूमि का अपहरण किया जा रहा है।

असल में हमारे देश में न तो उस प्रक्रिया को (जिसमें अर्द्ध सामन्ती समाज पूंजीवादी समाज में तब्दील हो गया) समझा गया और न ही आज जो घट रहा है उसे समझा जा रहा है। जमीन जोतने वालों के पास पहुंची कैसे और आज जमीन जोतने वाले से छीनी कैसे जा रही है। अगर इन बातों को ढंग से समझ लिया जाता है तो शायद हमारे देश में "संघर्ष का सच्चा नारा" खोजना इतना मुश्किल नहीं होगा जितना आज हुआ पड़ा है। यहां मार्क्स की पूंजीवाद के और लेनिन की साम्राज्यवाद के चरित्र के संदर्भ में कही गयी बातों की विस्मृति का भी एक मामला है।

मार्क्स ने पूंजी के प्रथम खण्ड में इस बात की विस्तार से चर्चा की है किस तरह 'पूंजीवादी उत्पादन का अरुणोदय' हुआ। किस तरह से आदिम संचय किया गया। किस तरह से अंग्रेज शासक वर्ग ने किसानों से जबरन जमीन लेने के लिए 'बाड़ाबंदी' अभियान छेड़ा।

यह अनायास नहीं है कि मार्क्स यह कहने को बाध्य हुए थे कि 'जब पूंजी संसार में आती है, तब उसके सिर से पैर तक प्रत्येक छिद्र से रक्त और गंदगी टपकती रहती है।'

'पूंजी' में मार्क्स ने इकतीसवें अध्याय में 'औद्योगिक पूंजीपति की उत्पत्ति' के विषय में जो लिखा है वह साफ तौर पर दर्शाता है कि दुनिया में ऐसा कोई पूंजीपति वर्ग नहीं हुआ है जिसने किसानों, मजदूरों, आदिवासियों के साथ बर्बर से बर्बर तरीके न अपनाये हों। उक्त अध्याय के कुछ हिस्से ध्यान देने योग्य हैं :

> "अमरीका में सोने और चांदी की खोज; आदिवासी आबादी का समूल नष्ट कर दिया जाना, गुलाम बनाया जाना और खानों में जिंदा दफना दिया जाना; ईस्ट इंडीज की विजय तथा लूट का श्रीगणेश; अफ्रीका का हबशियों के व्यापारिक आखेट की भूमि बन जाना- इसी प्रकार की घटनाओं के द्वारा यह संकेत मिला था कि पूंजीवादी उत्पादन का अरुणोदय हो रहा है। इन सुखद क्रियाओं का आदिम संचय में मुख्य भाग रहा है। उनके बाद तुरन्त ही यूरोपीय राष्ट्रों का वाणिज्य-युद्ध आरम्भ हो गया, जिसका क्षेत्र पूरा भूगोल था....।"
>
> (मार्क्स, पूंजी, खण्ड-1, पृष्ठ-790, पैरा-3, हिन्दी संस्करण- 1987, प्र.प्र. मास्को)

इसी तरह एंगेल्स ने अपनी पुस्तक 'इंग्लैंड में मजदूर वर्ग की दशा' नामक पुस्तक में वर्णन किया था कि किन नारकीय परिस्थितियों में उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्ध में मजदूर वर्ग रह रहा था। क्या फ्रांस में और फ्रांस ने दुनिया में इग्लैंड से कम बर्बरता का प्रदर्शन किया? क्या अमेरिका का इतिहास इससे अलग रहा है? फ्रांसीसी रास्ते ने सामन्ती उत्पादन सम्बन्धों के स्थान पर पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्धों को अपेक्षाकृत क्रांतिकारी ढंग से फ्रांस में स्थापित किया और प्रशिया में यह प्रक्रिया सुधारों के जरिये हुयी। दोनों ही रास्तों ने अन्ततः पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्ध स्थापित किये।

फ्रांसीसी रास्ते का महत्व इसी मामले में है कि उसने सामन्ती उत्पादन सम्बन्धों का खात्मा क्रांतिकारी ढंग से किया और इस तरह से उसने पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्धों की स्थापना त्वरित गति से की जबकि यही कार्यवाही जर्मनी में सुधारों के जरिये शनैः शनैः हुयी। पहली प्रक्रिया के केन्द्र में किसान थे तो दूसरी प्रक्रिया के केन्द्र में भूस्वामी वर्ग था। पहली प्रक्रिया में सामन्ती, पितृसत्तात्मक, मध्ययुगीन मूल्यों को एक झटके में उतार फेंका गया तो दूसरे में लम्बे समय तक ढोया गया। एक में जन सामान्य की पहलकदमी उत्कर्ष पर थी दूसरे में उसे कदम-कदम पर बाधित किया गया।

इस तरह दोनों ही रास्ते अपने चरित्र में बुनियादी रूप से भिन्न होने के बावजूद समाज में पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्धों को स्थापित कर रहे थे। हालांकि न तो फ्रांस का इतिहास और न ही जर्मनी का इतिहास दोनों ही रास्तों को आपस में काटता था। अर्थात न तो फ्रांस में ऐसा हुआ कि सुधारों को न अपनाया गया और न जर्मनी में ऐसा हुआ कि क्रांतिकारी विप्लव न हुए हों। फ्रांस में और इग्लैंड में भी दोनों ही जगह सामन्ती वर्ग ने अपनी सत्ता की पुनर्स्थापना के भरसक प्रयास किये और पूंजीपति वर्ग ने इसका प्रतिरोध किया। फ्रांस में 1789 की क्रांति से लेकर 1875 में तीसरे गणतंत्र की स्थापना तक का काल ऐसे संघर्षों से भरा पड़ा है। जर्मनी का उन्नीसवीं सदी का इतिहास किसान, निम्न पूंजीपति वर्ग, सर्वहारा, अर्द्ध-सर्वहारा के विप्लवों से भरा हुआ है जिसने जर्मनी के शासकों को समय-समय पर सुधारों को अपनाने को बाध्य किया। हिंसा-प्रतिहिंसा वर्गीय संघर्षों का अनिवार्य हिस्सा है।

जहां तक भारत का सवाल है यहां पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्धों की स्थापना में अगर कोई तुल्यता बैठती है तो वह प्रशियाई रास्ते से ही बैठती है। स्वाभाविक तौर पर हिंसा-प्रति हिंसा के तथ्य से भारत का इतिहास भी उसी तरह से युक्त है जिस तरह से किसी अन्य देश का। भारत में जब से पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्धों की स्थापना की प्रक्रिया शुरू हुयी है तब से यही कुछ घट रहा है। और आज पूंजी पूरे देश में हिंसा का जो नाच कर रही है वह वही है जो कई सदियों से पूंजी पूरी दुनिया में कर रही है। यह हिंसा के उसी तांडव का हिस्सा है।

जहां तक साम्राज्यवाद के युग में औपनिवेशिक, अर्द्ध-औपनिवेशिक या निर्भर देशों में पूंजीवाद के विकास का सवाल है, यहां पर वही गलती दुहराई जा रही है जिसकी ऊपर चर्चा की गयी है यानी लेनिन द्वारा साम्राज्यवाद के सम्बन्ध में कही गयी बातों को समझने से इंकार। वैसे तो इस संदर्भ में, लेनिन ने साम्राज्यवाद के चरित्र के बारे में कई स्थानों पर लिखा है परन्तु 'साम्राज्यवाद, पूंजीवाद की चरम अवस्था' में लेनिन ने स्पष्टतः लिखा है कि 'पूंजीवाद का विकास सबसे अधिक तेजी के साथ उपनिवेशों में तथा समुद्र पार के देशों में हो रहा है।' ध्यान रहे कि यह पुस्तक लेनिन ने आज से लगभग एक शताब्दी पूर्व के साम्राज्यवाद के संदर्भ में लिखी थी। तब की और आज की दुनिया की तुलना की जाय तो हम पायेंगे कि आज पूरी धरती में ही पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्ध कायम हो गये हैं। प्राक् पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्धों के बचे-खुचे अवशेष तेजी से मिट रहे हैं। सर्वहारा आबादी व शहरों का अभूतपूर्व विकास, देहाती अबादी में जबरदस्त ढंग से कमी, कृषि का अर्थव्यवस्था में लगातार गिरता हिस्सा जैसी चीजें यह बताने को पर्याप्त हैं कि एक शताब्दी में दुनिया में पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्धों को खत्म करने के लिए आवश्यक भौतिक आधार कहीं अधिक मजबूत और विस्तृत हो चुका है।

पूंजीवाद के विकास के चरित्र के बारे में उपजने वाली शिकायतों या भ्रमों के बारे मे (जिसकी चर्चा इस हिस्से के शुरू में की गयी थी) लेनिन की बातों को उद्धृत करने से अधिक बेहतर और कुछ नहीं होगा। उपरोक्त पुस्तक में ही लेनिन ने लिखा था,

> " यह मानी हुयी बात है कि यदि पूंजीवाद कृषि का विकास कर सकता, जो आज हर जगह उद्योग से बेहद पिछड़ी हुई है, यदि वह जन साधारण के रहन-सहन के स्तर को ऊंचा उठा सकता, जिन्हें आज भी आश्चर्यजनक तकनीकी उन्नति के बावजूद हर जगह भर-पेट भोजन नहीं मिलता और जो दरिद्रता का शिकार हैं, तो पूंजी के अतिरेक का कोई सवाल ही न पैदा होता। पूंजीवाद के टुटपुंजिया आलोचक बहुधा यह "दलील" पेश करते हैं। परन्तु यदि पूंजीवाद यह सब कुछ करता, तो वह पूंजीवाद न होता, क्योंकि असमान विकास और जनसाधारण के जीवन का अर्द्धभुखमरी का स्तर इस उत्पादन प्रणाली की आधारभूत तथा अनिवार्य शर्तें तथा पूर्वावस्थाएं हैं।" (लेनिन, साम्राज्यवाद, पूंजीवाद की चरम अवस्था,' पृष्ठ-77-78, संकलित रचनायें, चार खण्डों में, खण्ड-2 प्र.प्र. मास्को)

भारत में शासकों ने पूंजीवादी विकास का जो रास्ता चुना उसके परिणाम आज हमारे सामने हैं। यह विकास किसी जनवादी क्रांति के फलस्वरूप नहीं घटा है। यहां जो कुछ विकास हुआ वह क्रमशः अर्द्ध-सामंती समाज के शनैः शनैः पूंजीवादी समाज में तब्दील होने से हुआ। जहां तक साम्राज्यवाद से इसके सम्बंधों का सवाल है उन्हें हम आर्थिक नव-औपनिवेशिक सम्बंधों के रूप में चिह्नित करते रहे हैं। इस बात का अर्थ यहां पर यह है कि अगर 1990 के पहले चर्चा न भी करें तो उसके बाद के समय भारत में भारी मात्रा में विदेशी और साम्राज्यवादी पूंजी आयी है। तय बात है यह पूंजी भारत में ऊंचे मुनाफे कमाने के उद्देश्य से आयी है। भारत में ऊंचा मुनाफा कमाने के लिए सभी कुछ उपलब्ध है। सस्ती श्रम शक्ति, सस्ती जमीन, कच्चे माल की उपलब्धता के साथ एक बड़ा बाजार। तकनीक का नीचा स्तर इसमें और सुगमता पैदा कर देता है। यह तो वह पूंजी हो सकती है जिसे प्रत्यक्ष विदेशी निवेश कहा जाता है और जो उत्पादन में भूमिका निभाती है। यह पूंजी भारतीय समाज में कुछ मामलों में वही प्रभाव उत्पन्न करेगी जो भारतीय पूंजी करेगी। यानी पूंजी के प्रभाव के कारण वर्गीय ध्रुवीकरण, उत्पादक शक्तियों का एक तरह का विकास। परन्तु दोनों पूंजियों के चरित्र में बड़ा फर्क भी है। साम्राज्यवादी पूंजी भारतीय समाज में उस पैमाने पर पुनर्निवेशित नहीं होगी व अति मुनाफे अर्जित कर भारत से बाहर चली जायेगी। यहां यह बात भी नहीं भूलनी होगी कि भारतीय समाज में भारतीय पूंजी की हैसियत वरिष्ठ साझेदार की है और राजसत्ता पर भारतीय पूंजीपति वर्ग का कब्जा है। साथ ही साथ भारतीय पूंजीपति वर्ग भारी मात्रा में स्वयं विदेशी निवेश भी कर रहा है जो कि इस बात का द्योतक है कि भारतीय पूंजी ने वैश्वीकरण की नीतियों से लाभ भी अर्जित किये हैं और कर रही है।

आवारा पूंजी, चलायमान पूंजी, जुआरी पूंजी आदि नामों से सम्बोधित पूंजी जिसे विदेशी संस्थागत निवेश भी कहा जाता है, खतरनाक पूंजी है। जो भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए भारी संकट खड़ा कर सकती है परन्तु यह खतरनाक किन संदर्भों में है। यह पूंजी भारतीय पूंजीपति वर्ग और उसकी व्यवस्था के लिए खतरनाक है। यह उसे चौपट कर सकती है। यह भारतीय समाज में पूंजीवादी तनावों, विग्रहों को उनके शिरोबिन्दु पर यकायक पहुंचा सकती है। तबाही-बर्बादी का मंजर खड़ा करने वाली यह पूंजी मजदूरों, किसानों सहित भारतीय आबादी को गहरे संकट में ढकेल सकती है। लेकिन क्या एक पूंजीवादी व्यवस्था, साम्राज्यवाद के युग में इन संकटों से महफूज हो सकती है? या कोई ऐसे उपाय हैं जिनसे इसे महफूज बनाया जा सकता है? क्या इसे महफूज बनाने के बारे में सोचना हमारा काम है?

भारतीय समाज पिछले छः दशकों के पूंजीवादी विकास के फलस्वरूप गहरी उथल-पुथल से गुजर रहा है। डेढ़ दशक पहले भारतीय अर्थव्यवस्था का साम्राज्यवादी-पूंजीवादी व्यवस्था से एकीकरण का स्तर निम्न था परन्तु आज यह एकीकरण तीव्र गति से हो रहा है। पूंजीवादी विकास की आम नीतियों और इस एकीकरण की प्रक्रिया के दौरान अपनायी जाने वाली नीतियों ने भारतीय समाज में पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के कारण उपजने वाले तनावों, संकटों को और तीव्र किया है।

पूंजीवाद में आर्थिक व राजनीतिक विकास विषम गति से होता है, असमान होता है। यह नियम जहां पूरी दुनिया में लागू होता है वहां यह एक देश के भीतर भी लागू होता है। दुनिया में इस नियम के फलस्वरूप कभी कोई देश, कभी उद्योग की कोई शाखा का तीव्र विकास होता है और ऐसा साम्राज्यवाद के युग में और भी ज्यादा होता है। इस नियम को ध्यान में रखा जाय तो दुनिया में आज कुछ देशों की प्रगति आश्चर्य में नहीं डालेगी। कमोबेश यही देश के भीतर भी होता है। भारत के विभिन्न क्षेत्र, उद्योगों की विभिन्न शाखाओं में यह चीज दिखलायी देती है।

पूंजीवाद के असमान विकास के नियम तथा साम्राज्यवादी व्यवस्था से जारी एकीकरण के फलस्वरूप हम भारत में पा रहे हैं कि कई क्षेत्र जैसे हरियाणा, गुजरात, तमिलनाडु, महाराष्ट्र में औद्योगिक विकास तेजी से हो रहा है तो कई क्षेत्र ऐसे हैं जैसे उत्तर-पूर्वी राज्य, उत्तर प्रदेश, बिहार जहां कहीं-कहीं तो सैकड़ों वर्ग किलोमीटर में कोई उद्योग ही नजर नहीं आता है। ऐसे ही कृषि का पिछड़ापन भी है। पंजाब, हरियाणा, गुजरात जैसे राज्यों की तुलना में देश के बाकी कृषि क्षेत्र अत्यन्त पिछड़े हैं। कृषि और उद्योग, देहात और शहर का अंतर बढ़ता जा रहा है।

भारत का पूंजीवादी विकास पूरे देश में तीव्र वर्गीय ध्रुवीकरण को जन्म दे रहा है। किसान आबादी में विभेदीकरण की प्रक्रिया तीव्रगति से जारी है किसान आबादी की जमीन से बेदखली जारी है। आदिवासी आबादी का पार्थक्य तेजी से दूर हो रहा है। कच्चे माल की जरूरत, बांध-सड़कों के निर्माण, उद्योगों की स्थापना, रिहायशी इलाकों के निर्माण आदि के जरिये इस आबादी के पार्थक्य को भंग करने की प्रक्रिया जारी है। पूरी पूंजीवादी राजसत्ता बेरहमी से इस कार्यवाही को अंजाम दे रही है। गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी, विस्थापन, पुर्नवास न होने, जीवनयापन के साधनों के छिन जाने आदि ने सर्वहारा, अर्द्ध-सर्वहारा, छोटे-मझोले किसानों, दस्तकारों, छोटे उत्पादकों के जीवन को गहरे संकट में डाल दिया। राजसत्ता, क्रूरतापूर्वक इनके उठने वाले संघर्षों को कुचल रही है। दमन संघर्षों को एक नई और बड़ी जमीन उपलब्ध

करा देता है। कुल मिलाकर, भारतीय समाज में वर्ग संघर्ष एक नई दहलीज पर जाकर खड़ा हो गया है। सेज जैसी नीतियां इसको त्वरण ही प्रदान करेंगी।

अतः यहां नीति परिणामों पर रोने-धोने की नहीं होनी चाहिये बल्कि उसके कारणों पर हमले की होनी चाहिये। यह बात ठीक है कि भारत में इन नीतियों के परिणामों को प्रचारित करके सामाजिक उद्वेलन किया जा सकता है परन्तु यह उद्वेलन यदि वास्तविकता को उद्घाटित नहीं करेगा तो यथोचित दिशा हासिल नहीं कर सकेगा। हमारी नीति स्पष्ट होनी चाहिये। भारत में पूंजीवाद है। गरीबी, भुखमरी, असमानता, बेरोजगारी, विस्थापन, किसानों-मजदूरों की तबाही-बर्बादी आदि का कारण पूंजीवाद है। और पूंजीवाद ऐसा ही होता है। इसमें यही होगा। इसमें होने वाले विकास का यही चरित्र होगा।

एक क्रांतिकारी के नाते हमारा मुख्य काम सिर्फ परिणामों से लड़ने का नहीं बल्कि कारणों को समाप्त करने का है। परिणामों का प्रचार हम मात्र इसलिए करते हैं ताकि प्रचार, संघर्ष के दौरान वे मूल कारण को समझा सकें। परिणामों के खिलाफ संघर्ष का इतना ही महत्व है कि हम मूल संघर्ष के लिए जनता को तैयार कर सकें। आर्थिक संघर्षों, सुधार की लड़ाइयों का महत्व इन दो बातों में ही सन्निहित है कि एक तो जनता की गिरती हालत को रोका जा सके और इन आर्थिक संघर्षों, सुधारों की सीमाओं के साथ पूंजीवादी व्यवस्था के चरित्र का खुलासा किया जा सके और दूसरा यह कि जनता को लम्बी और मूल लड़ाई के लिए तैयार किया जा सके। हां! ये हमारे मूल काम का एक छोटा सा हिस्सा भर हैं; मूल काम नहीं।

IV
किसान प्रश्न

सेज या वैश्वीकरण या पूंजीवादी विकास का विरोध करते हुए कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों से आम तौर पर यह गलती हो रही है कि वे किसान आबादी को एक समांग वर्ग के रूप में लेते हैं। यह बात उनके पार्टी दस्तावेजों से अधिक व्यवहारिक कदमों में दिखायी देती है। पार्टी दस्तावेजों में तो रस्मी तौर पर किसान आबादी का वर्गीकरण मौजूद होता ही है। यद्यपि यह भारतीय समाज की वस्तुगत स्थिति के अनुरूप नहीं होता है।

देश के विभिन्न हिस्सों में सेज या अन्य औद्योगिक गतिविधियों के दौरान यह बात देखने में आ रही है कि भूमि अधिग्रहण के सरकारी या निजी क्षेत्र के प्रयासों के विरुद्ध पनपने वाले स्वतःस्फूर्त या कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों द्वारा या अन्य राजनीतिक समूहों द्वारा संगठित किये जाने वाले आंदोलनों के नेतृत्व तथा मुद्दों में धनी किसान और मझोले किसानों के हित ही प्रतिबिम्बित होते हैं। फार्मर, धनी किसान, मझोले किसानों का समूह इन आंदोलनों को नेतृत्व व दिशा दे रहा होता है और भूमि अधिग्रहण के समय इनकी मुख्य मांग भूमि की अधिक से अधिक कीमत की होती है।

पहले पहल केन्द्र व राज्य सरकारों ने 'जनहित' के नाम पर भूमि अधिग्रहण किया और अधिग्रहीत भूमि को कौड़ियों के दाम पर निजी पूंजीपतियों व डेवलेपर्स को बेच डाला। उड़ीसा, बंगाल, पंजाब, महाराष्ट्र, हरियाणा आदि कई राज्यों में इस नीति का व्यापक विरोध हुआ और यहां तक कि स्वयं पूंजीपति वर्ग के एक धड़े ने, जो देहाती पूंजीपतियों के हितों का प्रतिनिधित्व करता है, इस नीति का व्यापक विरोध किया। नारा उछाला गया कि 'किसान और पूंजीपतियों के बीच सरकार कहां से आयी'। बुर्जुआ सिद्धान्तकारों, मीडिया और न्यायालय के विरोध के बाद सरकारें प्रत्यक्ष रूप से भूमि अधिग्रहण से फौरी तौर पर पीछे हट गयी हैं। सरकार के पीछे हटने का जहां औद्योगिक पूंजीपतियों तथा डेवलपर्स ने विरोध किया वहां इससे फार्मरों और धनी किसानों को बड़ा लाभ हासिल हो रहा है। दिल्ली, मुम्बई, बैंगलौर जैसे क्षेत्रों के इर्द-गिर्द तो जमीनों के दाम असमान छूने लगे हैं (यद्यपि इसमें कुछ अन्य कारक भी सक्रिय हैं)। मझोले किसानों का एक हिस्सा जहां लाभान्वित हो रहा है वहां एक हिस्सा शनैः शनैः और अप्रत्यक्ष तरीके से तबाही की ओर बढ़ रहा है। छोटे किसानों की तबाही और बर्बादी अधिक प्रत्यक्ष तथा शीघ्र हो रही है। वे हर तरह के छल और प्रपंच का शिकार हैं। देहाती क्षेत्र में अर्द्ध-सर्वहारा व सर्वहारा आबादी दरिद्रता, भुखमरी, शोषण-उत्पीड़न के एक गढ्ढे से दूसरे गढ्ढे में धकेली जा रही है। परन्तु इस त्रासदी के भीतर ही वह युगान्तरकारी शक्तियां छुपी और विकसित हो रही हैं जो हमारे समाज को एक नये समाज की ओर धकेलेंगी।

देहाती सर्वहारा व अर्द्ध-सर्वहारा आबादी का दरिद्रता और भुखमरी की अवस्था में देहात से शहरों की ओर पलायन निरन्तर जारी रहता है। देहात से शहरों में आते ही यह आबादी एक गहरे बदलाव की प्रक्रिया से गुजरती है। देहाती जीवन का पिछड़ापन, अलगाव व अज्ञान शहरी, औद्योगिक व आधुनिक जीवन में आड़े आता है और बाद वाले

जीवन जीने की विवशता उसे उस सर्वहारा के रूप में विकसित कर देती है जिसे पूंजीवाद का नाश करने में अग्रणी भूमिका निभानी है। सेज, उद्योगों, बांधों या खानों के लिए भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया में जो आबादी सबसे पहले विस्थापित होती है, वह यही होती है। भूमि से वंचित (या कुछ मामलों में नाम मात्र की भूमि का मालिक) यह वर्ग जिन संकटों का सामना करता है वे आम तौर कहीं चर्चा का विषय नहीं बनते हैं। बुर्जुआ मीडिया से लेकर क्रांतिकारी प्रगतिशील प्रचार माध्यमों की चर्चा की विषयवस्तु इनकी गरीबी, भुखमरी, विस्थापन, पलायन या अन्य संकट नहीं बनते हैं। देहाती सर्वहारा व अर्द्ध-सर्वहारा जिन तरीकों से अपनी गुजर-बसर कर रहा होता है, वे छिन जाते हैं। जिस हुनर का वह मालिक होता है अक्सर ही वे बेकार साबित हो जाते हैं। जिस आवास व परिवेश में वह रह रहा होता है वह उससे वंचित हो जाता है। जो भाषा वह बोलता है वह परायी हो जाती है। जिस रहन-सहन, खान-पान, संस्कृति का वह आदी होता है वह उससे छीनी जाती है। जाति-बिरादरी, पारिवारिक सम्बंध छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। इस तरह से इस प्रक्रिया में यह सर्वहारा, अर्द्ध-सर्वहारा आबादी उस सब कुछ से भी वंचित होती जाती है जो कुछ भी भौतिक अथवा अत्मिक रूप में उसके पास मौजूद होता है, जो कुछ भी शेष रहा होता है।

दिल्ली, मुम्बई, कलकत्ता, जैसे शहरों में इस आबादी को रोज ही रेलवे स्टेशनों, बस अड्डों में आते हुए देखा जा सकता है। इस आबादी के पास एक-दो जोड़ी कपड़े व एक थैले के अतिरिक्त कुछ नहीं होता है। एक शहर से दूसरे शहर, दूसरे शहर से तीसरे शहर चलती-फिरती यह आबादी आज के भारतीय समाज के सबसे बड़े वर्ग सर्वहारा वर्ग का ऐसा हिस्सा है जो अपने-आपको इन प्रक्रियाओं से प्रशिक्षित कर वहां पहुंच रहा है जहां क्रांतिकारी विचारों से परिचित होते ही यह आमूल चूल परिवर्तनों की मुख्य शक्ति का हिस्सा बन सकता है।

सर्वहारा वर्ग के दृष्टिकोण पर दृढ़तापूर्वक खड़े होकर ही कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों को अन्य सहयोगी वर्गों व तबकों के बारे में अवस्थिति ग्रहण करनी चाहिये। यानी कि जब भी हम छोटे और मझोले किसानों के संदर्भ में अवस्थिति ग्रहण कर रहे होंगे तो हम उन्हें यह बात अच्छी तरह से सम्प्रेषित कर रहे होंगे कि पूंजीवाद में उनके छोटी जोत वाले उत्पादन को बड़े पैमाने का पूंजीवादी उत्पादन अवश्यम्भावी रूप से तबाह-बर्बाद कर देगा। यहां पर हमारे लिए एक शताब्दी से अधिक समय पहले कही गयी एंगेल्स की बातें नजीर बन जाती हैं। 'फ्रांस और जर्मनी में किसानों के सवाल' पर चर्चा करते हुए एंगेल्स कहते हैं कि "छोटी जोत वाले किसानों को हम न तो आज और न भविष्य में कभी यह आश्वासन दे सकते हैं कि पूंजीवादी उत्पादन की प्रचण्ड शक्ति से उनकी व्यक्तिगत सम्पत्ति और उनके व्यक्तिगत उद्यम की रक्षा की जा सकती है"। छोटे किसानों के सम्बंध में सर्वहारा नीति को स्पष्ट करते हुए एंगेल्स आगे कहते हैं कि, "सर्वहारा की पांतों में जबरन ढकेले जाने से हम जितने ही अधिक किसानों को बचा सकें, जितने अधिक को किसान रहते हुए ही हम अपनी ओर कर सकें, उतनी ही जल्दी और आसानी से सामाजिक कायापलट सम्पन्न होगा"। जो बातें छोटे किसानों के संदर्भ में सही हैं वह ही अन्य छोटे उत्पादकों, दस्तकारों के संदर्भ में भी सही हैं।

समाजवादी क्रांति की मंजिल को मानने वाले हमारे पार्टी संगठन की छोटे किसानों के सम्बंध में नीति है कि ये भारतीय क्रांति के फौरी रिजर्व हैं और सर्वहारा के सबसे करीबी भरोसेमंद मित्र हैं। इनके बीच हमारे राजनीतिक प्रचार की मुख्य बात यही है कि पूंजीवादी समाज में उनकी मुक्ति सम्भव नहीं है। वह तो समाजवादी समाज में सामूहिकीकरण के जरिये ही सम्भव हो पायेगी। इस बात को अपनी मुख्य नीति बनाते हुए ही छोटे किसानों को तात्कालिक राहत पहुंचाने वाले विभिन्न संघर्षों का सहयोग व समर्थन किया जाना चाहिये।

इस नीति के तहत सेज या अन्य पूंजीवादी गतिविधियों के दौरान छोटे किसानों की भूमि के अधिग्रहण या अन्य मामलों में नीति निर्धारित की जा सकती है। कुछ मांगें निम्नवत हो सकती हैं।

देशी-विदेशी व साम्राज्यवादी पूंजी के हितों को साधने वाले विशेष आर्थिक क्षेत्रों का विरोध तथा भूमि अधिग्रहण का, चाहे उसे केन्द्र-प्रान्त की सरकारें करें अथवा निजी पूंजी करे, विरोध। इस दौरान छोटे मझोले किसानों की लूट-खसोट और ठगी, जो धड़ल्ले से जारी है, की पूर्ण मुखालफत। इसी तरह विशेष कृषि क्षेत्रों के निर्माण का विरोध।

भूमि अधिग्रहण के समय छोटे व मझोले किसानों के हितों के अनुरूप वर्गीकृत (graded) मांग उठाना ताकि उन्हें भूमि व रिहायश का उचित मुआवजा मिल सके। पुनर्वास का यथोचित बंदोबस्त और रोजगार मुहैया कराना तथा इसके लिए निःशुल्क आवश्यक प्रशिक्षण देने का बंदोबस्त करना। बच्चों के लिए निःशुल्क शिक्षा व सभी परिवारों के लिए मुफ्त स्वास्थ्य सेवा उपलब्ध कराना। सेज में बनने वाली आवासीय कालोनियों में उस इलाके के प्रभावित सर्वहारा, अर्द्ध-सर्वहारा, छोटे व मझोले किसानों को आवास उपलब्ध कराना।

जहां तक मझोले किसानों का प्रश्न है ये सर्वहारा वर्ग के ढुल-मुल मित्र हैं। अतः इन्हें सर्वहारा वर्ग के पक्ष में खड़ा करने के लिए जरूरी है कि सेज जैसी नीतियों के कारण इनके जीवन में आ रहे संकट के खिलाफ संघर्ष में उपरोक्त नीति के तहत ही मदद की जाय। इनके बीच भी स्पष्ट तौर पर यह प्रचार किया जाय कि पूंजीवाद के अंतर्गत

उनकी तबाही-बर्बादी या उनके जीवन में एक के बाद एक संकट लाजिमी हैं। इससे मुक्ति सर्वहारा के नेतृत्व में होने वाली क्रांति तथा समाजवाद में सामूहिकीकरण के जरिये ही हो सकेगी। कुल मिलाकर हमारी नीति अथवा नारा क्या होगा? वह होगा- 'शहर और देहात में पूंजीवाद के विरुद्ध सर्वहारा की सत्ता के लिए, गरीब किसानों को साथ लाओ, मझोले किसानों के साथ संश्रय कायम करो'। सेज या भावी साज के विरुद्ध भी हम इस आम नीति अथवा नारे के तहत काम करेंगे।

V
सेज का भविष्य

सेज के संदर्भ में अक्सर चीन का उदाहरण दिया जाता है। यह उदाहरण तीन अलग-अलग समूहों द्वारा दिया जाता है। शासकों द्वारा चीन के विकास और विदेशी निवेश को जबरदस्त ढंग से आकर्षित करने के उदाहरण के तौर पर सेज को प्रस्तुत किया जाता है। भाकपा व माकपा द्वारा सरकार की नीति की आलोचना के पक्ष में जिसके द्वारा वे चाहते हैं कि देशी-विदेशी पूंजी के मुक्त चारागाह की जगह वे सरकार द्वारा संरक्षित क्षेत्र बनें। क्रांतिकारी व प्रगतिशील साहित्य में पूंजी की बेलगाम छूट, शोषण के निर्मम अड्डे व किसानों की व्यापक तबाही के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। पहले दो समूहों द्वारा यह उदाहरण सकारात्मक रूप में प्रस्तुत किया जाता है जबकि तीसरे समूह द्वारा नकारात्मक उदाहरण के रूप में।

भारत के शासक वर्ग को चीन के विशेष आर्थिक क्षेत्रों की यह चीज प्रभावित करती है कि वे विदेशी निवेश को जबरदस्त ढंग से आकर्षित करते हैं और निर्यात में उनका ऊंचा योगदान है। एक तथ्य के अनुसार चीन में होने वाले प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का बीस फीसदी इन क्षेत्रों में होता है तथा निर्यात में इन क्षेत्रों का योगदान लगभग एक चौथाई (23 फीसदी) है। ध्यान रहे कि दुनिया में कुल प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का दसवां हिस्सा अकेले चीन में निवेशित होता है। भारत के शासक ऐसी ही स्थिति के लिए लालायित हैं। साथ ही उन्हें चीनी शासकों की मजदूरों और किसानों के सम्बन्ध में अपनायी जाने वाली निर्मम नीति भी पसन्द आती है तथा 'चीनी समाजवाद' भारत के वामपंथियों के लिए एक जवाब भी बन जाता है।

सामाजिक-जनवादी एक साथ अपने को सेज का समर्थक व आलोचक दिखाना चाहते हैं। उत्पादक शक्तियों के विकास के उदाहरण, भारत के मुकाबले चीन में इन क्षेत्रों का विकास किया जाना व अपेक्षाकृत सीमित संख्या में होना तथा सरकार द्वारा नियंत्रित होने के कारण इनके चरित्र पर पर्दा डालकर ये अपने को मजदूरों-किसानों के हितैषी के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

तीसरे समूह द्वारा चीन के विशेष आर्थिक क्षेत्रों के मार्फत भारत में इन क्षेत्रों से मजदूरों-किसानों के भविष्य की ओर ठीक इशारा करके उद्वेलित किया जाता है।

चीन मे विशेष आर्थिक क्षेत्रों में काम करने वाले स्त्री-पुरुष मजदूरों को आम तौर से 12 से 14 घंटे काम बहुत ही कम मजदूरी में करना पड़ रहा है। देहातों से उजड़े हुए किसान जो इन क्षेत्रों में काम करते हैं, नागरिक अधिकारों और नागरिक सुविधाओं से महरूम हैं। अत्यधिक काम करने से मजदूर ग्योलाओसी (guolaosi) नामक बीमारी का शिकार होकर यकायक मर जा रहे हैं। इन क्षेत्रों के मजदूरों की एक बड़ी आबादी को न तो साप्ताहिक अवकाश मिलता है और न ही पेंशन, फंड, मेडिकल सुविधाएं मिलती हैं। बुरी जीवन स्थितियों में रहने वाले इन मजदूरों की कोई पारिवारिक जिन्दगी भी नहीं है। इसी तरह किसान आबादी के बड़े हिस्से का दरिद्री- करण बढ़ने के साथ विशेष आर्थिक क्षेत्रों, बांध, पावर प्लांट, सड़क-रेल आदि के निर्माण के समय इनकी भूमि का अधिग्रहण किया गया है। प्रतिरोध पर चीन की सरकार ने कई स्थानों पर किसानों की हत्याएं की हैं और उन्हें जेलों में ठूंसा है।

चीनी समाज चरम विषमताओं का समाज बनता जा रहा है। गरीबी-अमीरी, शहर-देहात के बीच के अन्तर तीक्ष्ण होते जा रहे हैं। विशेष आर्थिक क्षेत्र से चीनी शासक व साम्राज्यवादी मजदूरों का बेरहमी से शोषण करके अकूत मुनाफा कमा रहे हैं। कोई बड़ी बात नहीं है कि, आज तीखे वर्गीय शोषण के ये अड्डे कल को तीखे वर्ग संघर्ष के केन्द्र भी बन जायें।

दुनिया के 116 देशों में इस वक्त 3000 से भी अधिक सेज, विशेष निर्यात क्षेत्र, मुक्त व्यापार क्षेत्र बने हुए हैं। इतनी बड़ी संख्या में पहले से मौजूद इन क्षेत्रों के साथ भारत में भी आने वाले दिनों में सेज की संख्या 1000 पहुंचने वाली है। पूरी दुनिया में विदेशी पूंजी निवेश को आकर्षित करने, सस्ते माल को तैयार करने और व्यापार में हिस्सेदारी को

बढ़ाने को लेकर तीखी प्रतिद्वन्द्विता मौजूद है। चीन और फिलीपीन्स के मुक्त क्षेत्रों की सफलता के अलावा एक बड़ी संख्या असफलता के साथ जुड़ी हुई है।

भारत में चीन के 'सफल' उदाहरण की चर्चा तो शासक वर्ग खूब जोरों से करता है परन्तु असफल देशों के उदाहरणों की चर्चा नहीं की जाती है। भारत में जितने विशाल पैमाने पर इनका निर्माण हो रहा है, असफलता की स्थिति में ये अधिक गहरे संकट को जन्म देंगे तथा भारी आर्थिक तबाही फैलायेंगे। औद्योगीकरण के स्थान भारी पैमाने पर विऔद्योगीकरण दो कारणों से होगा। पहले तो इसलिए कि सेज में मिलने वाली छूटों और सुविधाओं के कारण ढेर सारी औद्योगिक इकाइयों व सेवाओं का स्थानान्तरण इन स्थानों पर होगा। इस तरह से कई मामलों में सेज में होने वाला औद्योगीकरण देश के अन्य स्थानों की कीमत पर होगा। दूसरी स्थिति में सेज की असफलता इन स्थानों में लगे उद्योग और सेवा क्षेत्र की गतिविधियों को ठप्प कर भारी नुकसान पूरे समाज को पहुंचायेंगी। भारत का शासक वर्ग इस अवस्था में अपनी व्यवस्था तथा देशी-विदेशी पूंजी के हितों की रक्षा के लिए मजदूरों और शेष मेहनतकश आबादी के ऊपर अपने द्वारा जनित संकट को डालेगा और अधिक दमन करने की ओर बढ़ेगा।

दुनिया में दशकों से मौजूद मंदी और ठहराव के संकट के बीच भारत का शासक वर्ग चीन के उदाहरण को दोहराना चाहता है। यानी जब दुनिया में मौजूद आर्थिक संकट के कारण पूंजीवाद के मूलभूत अन्तर्विरोध क्रमशः तीखे और घनीभूत हो रहे हैं उस वक्त भारत का शासक वर्ग, पूंजीपति वर्ग इन क्षेत्रों के जरिये न केवल भारी पूंजी निवेश को आकर्षित करना चाहता है बल्कि भारत के मजदूरों के सस्ते श्रम के दोहन के दम पर सस्ते माल से दुनिया के बाजारों को चीन की तर्ज पर पाटना चाहता है। और इस कवायद में दुनिया के 116 देश लगे हुए हैं। तब इसका नतीजा क्या निकलने वाला है? सार यह है कि पूंजी को जो विशेष छूट और सुविधाएं कुछ समय पूर्व तक किसी देश विशेष में, किसी क्षेत्र विशेष में मिली हुयी थीं, वह अब दुनिया के अधिकांश देशों में मिल रही होंगी। यानी पूंजी के लिए जो असमतल मैदान उपलब्ध था वह कुछ समय बीतते-बीतते पुनः समतल मैदान की ओर बढ़ जायेगा। यानी पूंजी को मिलने वाली विशिष्ट छूटें, सुविधाएं आम हो जायेंगी। इस तरह पहले से ही संतृप्त बाजार और अधिक सस्ते माल से पट जायेंगे और आर्थिक संकट उत्तरोत्तर और अधिक गम्भीर हो जायेंगे। जाहिर सी बात है भारत के शासकों का स्वागत एक अति गम्भीर आर्थिक संकट निकट भविष्य में कर रहा है। और ऐसी स्थिति में यह संकट पूरे समाज में व्यापक तबाही और बर्बादी फैलायेगा। शासक वर्ग इस संकट का बोझ जनता के ऊपर डालेंगे तथा प्रतिरोध करने पर दमन पर उतारू हो जायेंगे। इस बात की भी संभावना है कि यह परिघटना किसी स्तर पर या तो जाकर ठहर जाये या फिर वैश्विक या भारतीय पूंजीवाद के किसी संकट की अवस्था में यह पूरी नीति ही शासक वर्ग त्यागने को बाध्य हो जाये।

वास्तव में सेज जैसे क्षेत्रों की नीति पैदा होने में प्रमुख वजह यही थी और अब यह इस संकट को और गंभीर संकट की ओर धकेलेगी।

भारत जैसे देश की मुश्किल तो यह भी है कि यहां एक बड़ा संकट किसी भी कारण से प्रारम्भ हो सकता है। इसका कारण विदेशी संस्थागत पूंजी के यकायक पलायन से उपजा वित्तीय संकट, कृषि क्षेत्र की विकास दर का ऋणात्मक या स्थिर रहने की वजह से कृषि संकट, भारत सरकार का बढ़ते राजस्व घाटे के कारण राजस्व संकट (जिसमें अनुमान लगाया जा रहा है कि 2009-10 के वित्तीय वर्ष में सेज के कारण 1 लाख करोड़ रुपये से भी अधिक का नुकसान होगा), मजदूरों-किसानों के विरोध या अन्य किसी वजह से उत्पन्न होने वाला राजनैतिक संकट या पड़ोसी देशों से युद्ध इसकी वजह बन सकते हैं। एक संकट दूसरे संकट को न केवल जन्म दे सकता है बल्कि एक-दूसरे को तीखा करके ये क्रांतिकारी संकट को भी जन्म दे सकते हैं। ऐसी स्थिति में भारत के शासकों के 2020 तक एक 'विकसित राष्ट्र' बनने के सपने कभी भी बिखर सकते हैं। इन अर्थों में अगर सेज को देखा जाय तो तात्कालिक रूप से ये हो सकता है कि पूंजीवादी विकास को गति दें परन्तु यह काल अधिक लम्बा नहीं चल सकता है। उल्टे जिस ढंग से पूरे देश में इनका विरोध हो रहा है और सरकार को भूमि सीलिंग जैसे मामलों में पीछे हटना पड़ा है वह इनके भविष्य की ओर एक अन्य तरीके से भी इशारा कर रहा है।

विशेष आर्थिक क्षेत्रों को भारत का शासक वर्ग 'विकास के इंजन' के रूप में प्रचारित कर रहा है लेकिन जैसे एक स्थान पर पूंजी संकेन्द्रित हो रही है वैसे ही इन स्थानों पर सर्वहारा भी बड़े पैमाने पर इकट्ठा हो रहा है। इस तरह देखा जाय तो भारत का शासक वर्ग वर्ग-संघर्ष के विशाल केन्द्रों का निर्माण कर रहा है। भावी सामाजिक उथल-पुथल के केन्द्र देश के प्रमुख शहरों के साथ सटे हुए हैं। अपने आप में ये विशाल शहर भारतीय समाज की विपरीत शक्तियों को एक स्थान पर समेटे हुए हैं। कोई बड़ी बात नहीं है कि पेरिस कम्यून अपने को यहां दोहराये या फिर मॉस्को, पीटर्सबर्ग की तरह ये किसी बोल्शेविक क्रांति के केन्द्र बन जायें।

■■■